



रामधारी सिंह दिवाकर के उपन्यासों में चित्रित ग्रामीण जन-जीवन

लक्ष्मी देवी

शोध अध्येत्री (पी-एच.डी.) हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू (जम्मू & काश्मीर), भारत

Received- 23.06.2020, Revised- 25.06.2020, Accepted - 28.06.2020

E-mail: ldevi0234@gmail.com

सारांश : वर्तमान समय का मनुष्य उत्तर आधुनिकता का चोगा ओढ़े नगरीय तौर-तरीके अपनाते को आकुल है। बाजार की अपनी संस्कृति एवं सभ्यता है। इस संस्कृति में व्यक्ति के पास तमाम सुविधाएँ रहती हैं। इस संस्कृति में व्यक्ति के पास तमाम सुविधाएँ रहती हैं। इस संस्कृति का प्रभाव केवल नगरों, महानगरों पर ही नहीं बल्कि गांव पर भी पड़ रहा है। गाँव में ही प्रेम भावना, भाईचारे की भावना, संवेदनशीलता, एक-दूसरे की खुशियों एवं दुख-दर्द को अपना समझने की प्रवृत्ति बची हुई थी। परन्तु आज के समय में गाँव का स्वरूप धीरे-धीरे बदलता नज़र आ रहा है। आधुनिक ग्रामीण जीवन में भी शहरीपन समा चुका है। शहरीकरण, औद्योगीकरण, उदारीकरण के कारण ग्रामीण जनजीवन में तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं। आज के व्यक्ति का सामाजिक सरोकारों से वंचित होकर स्व तक सीमित हो जाना सहजीवन की वृत्तियों को भुला देना यह क्या है? उन्नतिशील समाज का द्योतक या समाज का विघटन। समाज के अन्तर्गत तीव्रगामी से हो रहे बदलाव प्रगतिवादियों के लिए तो शुभ सूचना के संकेत हो सकते हैं, किंतु एक प्रबल सामाजिक परंपरा के लिए कमजोर करने वाली प्रक्रिया है। आधुनिकता की खुली हवा में जवान होती आज की पीढ़ी के खुले विचारों के कारण नयी जीवन पद्धतियाँ अपनाई जा रही हैं। इसे आप विघटन कह लें अथवा सामाजिक बदलाव। कथा साहित्य इस परिवर्तन को महसूस कर रहा है और इसे अपनी तरह से व्याख्यायित भी करने से पीछे नहीं है। साहित्य की अन्य विधाओं में भी ग्रामीण यथार्थ को वर्ण्य विषय बनाया है। लेकिन उपन्यास ने ग्रामीण संवेदनाओं को, गाँव की माटी में रहकर दुख-दर्द व संत्रास भोगने वाले दलितों की दयनीय स्थिति को, किसानों की त्रासदी को पूरी ईमानदारी के साथ हूबहू परोसकार महाकाव्यात्मक का रूप धारण कर लिया है।

कुंजीभूत शब्द- समाजिक, परिवर्तन, शहरीकरण, विघटन, भावना, सरोकारों, ग्रामीण जनजीवन, सुविधाएँ।

ग्राम्य संवेदनाओं को गहराई से पकड़ने वाले रामधारी सिंह दिवाकर का जन्म 1 जनवरी 1945 को बिहार के अररिया जिले के नरपतगंज गांव में हुआ। वे ग्राम्य चेतना के कुशल चितरे कहे जा सकते हैं। उनके लेखन व चिंतन में गांव की माटी की खुशबू पोर-पोर में समाहित है। सुपरिचित कथा-शिल्पी रामधारी सिंह दिवाकर ग्रामीण जनजीवन के सशक्त कथाकार हैं। उनके उपन्यास 'क्या घर क्या परदेस', 'काली सुबह का सूरज' तथा 'अकाल संध्या' ग्रामीण जनजीवन के दस्तावेज हैं। दिवाकर जी अपनी पहली ही औपन्यासिक कृति 'क्या घर क्या परदेस' में गांव की आर्थिक व सामाजिक विसंगतियों को उभारने में सफल दिखते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में दर्शाया गया है कि ईमानदार व्यक्ति को अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित होकर तनाव के कारण प्रत्येक सतह पर विवश होकर टूटना पड़ता है। इसके साथ ही वे सही-गलत तत्त्व से निर्णय करता है। जिसके कारण वह शोषण प्रक्रिया करने वाले व्यक्तियों में सम्मिलित हो जाता है और उसे गतिशील भी बनाए रखता है। "आज की बदली हुई परिस्थिति

में गांव की स्थिति यह है कि अपने ही खेत में अपने हाथ से खेती करने वाला व्यक्ति हेय दृष्टि से देखा जाता है। दूसरी ओर ऐन-केन प्रकारेण पैसा बटोरने वाले भ्रष्ट चरित्र समाज के लिए आदर्श बन गए हैं।" आज मात्र पैसा ही सामाजिक स्थापना की प्रमुख नींव बन गयी है। जिसका वर्णन उपन्यास में सखीचन्द, अजय, संतसेवी और रामलगन जैसे पात्रों के आधार पर पूरी भावुकता से किया गया है।

विवेच्य उपन्यास की कथावस्तु ग्रामीण वातावरण तथा ग्रामीण विचारधारा के साथ जुड़ी हुई है। उपर्युक्त उपन्यास का नायक परिस्थितियों से समझौता नहीं कर पाता है। जिस कारण वह परदेश की ओर चल देता है। परन्तु उसे परदेश में भी उसी कण्टकर स्थिति से गुजरना पड़ता है। क्योंकि गांव के बाहर भी शोषण की प्रक्रिया उपलब्ध है। ईमानदार और नैतिक चरित्र वाले व्यक्ति को समाज में क्यों घुट-घुटकर जीना पड़ रहा है। प्रस्तुत उपन्यास में ऐसे ही प्रश्नों के उत्तर तलाशने का प्रयास किया गया है। आज के वातावरण में ईमानदारी से जीने की कोशिश एक मूर्खता है, तथा वही सफल है जो चालाकी से



पैसे कमाना जानता है। यह सच्चाई सिर्फ शहरी जीवन के माध्यम से ही नहीं, अपितु ग्रामीण जीवन में भी हर जगह उपस्थित हो गई है। उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास में इसी सच्चाई की अभिव्यक्ति कौशल और उसके परिवार को आधार बनाकर प्रस्तुत की है।

कौशल एक परिश्रमी व्यक्ति है, जो अपने बीमार बाप, बूढ़ी मां, विधवा बहन और उसकी बेटी का इकलौता सहारा है। परिवार में अत्यन्त गरीबी होने के कारण भी वह आर्थिक विषमताओं का सामना करते हुए बी.ए. तक पढ़ता है और फिर एक साधारण सी नौकरी को पाने हेतु परिवार सहित अनेक प्रकार के कष्टों को झेलता है। वह गांव से दिल्ली की ओर जाता है परन्तु वहां पर भी वह टिक नहीं पाता क्योंकि वह ईमानदारी से जीवन व्यतीत करना चाहता है। उसके चाचा नूनू बाबू ठेके, कोऑपरेटिव आदि चालाकी के हथकंडे अपनाकर सुखी जीवन व्यतीत करते हैं – “दलित युवा नेता रागलगन ‘दलित सांसद’ के नाम पर कई धंधे चलाता है। मैट्रिक तक पढ़े लड़के किसी-न-किसी लूट के धंधे में लगकर मजा करते हैं।”¹² सबके बुरे कामों का साक्षी भिखारी रामदास है, वह भली-भान्ति परिचित है कि सखीचन्द सरकारी स्टोर का सामान बेचकर शानौ-शौकत का जीवन व्यतीत करता है। सन्तसेवी ने धोखेबाजी से किसना की मां की डेढ़ बीघा जमीन पर अपना कब्जा कर लिया है, क्योंकि वह जानता है कि किसना की मां अपनी गरीबी के कारण कोर्ट-कचहरी तक नहीं जा सकेगी। उसे न्याय मिलना असंभव है। कौशल को बार-बार नूनू चाचा के व्यंग्य याद आते हैं – “पढ़कर आखिर होता क्या है? पैसा ही कमाना है न? तो उसके तो हजार रास्ते हैं। मैं कितना कम पढ़ा-लिखा हूँ। कितने बी.ए., एम.ए., वकील, मुख्तार, अमला, तहसीलदार अफसर, मेरे पीछे-पीछे घूमते हैं। असली चीज है सम्पत्ति। यही नहीं है तो पढ़ा-लिखा आदमी दो कौड़ी का नहीं है ...।”¹³ दौलत कमाने का अवसर कौशल के पास भी आता है। परन्तु उसके साथ शर्त लगी रहती है कि वह दलित सांसद की रखैल की बेटी से शादी करे।

कौशल एक निम्नवर्ग परिवार से संबन्ध रखता है। पढ़ाई समाप्त होने के लम्बे समय तक उसे कहीं भी नौकरी नहीं मिलती है। तत्पश्चात् उसे ज्ञात होता है कि आजकल नौकरी के लिए जातिवाद का समर्थक, वंश कुल से जुड़े संबंध होना है तथा एक ऐसी राजनैतिक सहजता नितान्त आवश्यक है, जिससे कौशल की दूर से भी घनिष्ठता नहीं है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक अपनी बेरोजगारी के दौर में अपने गांव के यथार्थ से भली-भांति परिचित होता है। बुरे वक्त में उसे कहीं से भी समर्थन नहीं मिलता है।

जिससे वह तंग आकर दिल्ली की ओर चल देता है। वहां पर भी वह नौकरी की तलाश करता है। दिल्ली में भी नौकरी एक मरीचिका सी प्रतीत होती है – “एक पत्रिका के पेट में अपने सर्टिफिकेट मैं एक दतर से दूसरे दतर घूमा करता था। उधर अखबारों में केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा घोषणाएँ पढ़ने को मिल रही थीं शिक्षित बेरोजगारी, गरीबों, भूमिहीनों, गृहविहीनों, आदिवासियों, हरिजनों वगैरह की बाबत ऐसी आकर्षक योजनाओं को मैं पढ़ता और स्वयं को देखकर मुस्कराने लगता था।”¹⁴ कौशल निराशा के दौर में अपना खून बेचकर गुजारा करता है और कृतज्ञता भी स्पष्ट करता है – “उन दिनों महानगर की उदारता का मैं शुकुगुजार हुआ था कि ऐसी-ऐसी जगहें भी यहां हैं जहाँ सवा रुपए में जीने भर के लिए खाना मिल सकता है।”¹⁵ अपने क्षेत्र के एक सांसद के अनुरोध द्वारा उसे अखबार के दतर में नौकरी मिलती है। इस नौकरी के दौरान बुद्धि के भ्रम द्वारा उसे अपने ही गांव के कम पढ़े-लिखे युवक उस पर व्यंग्य करते हुए नजर आते हैं कि कौशल इससे अच्छा वह अधिक न पढ़ा-लिखा होता। वह इन सब बातों का सामना न कर पाने के कारण वापिस अपने गांव लौट आता है। गांव में अभी भी मृत्यु के समीप पिता, आर्थिक विपत्ति और समस्त निकट कष्ट है। कौशल की कथा के साथ ही भारतीय संस्कृति, शिक्षा, अर्थव्यवस्था तथा राजनीतिक व्यवस्था का प्रकटीकरण होता है। इसके साथ ही गांव की मर्मस्पर्शी स्थिति, शहरों तथा गांवों में गरीबी, शोषण और उनका समर्थन करने वाले लोगों की असावधानी से भरी निर्दयता है। प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से ज्ञात होता है कि ईमानदार व्यक्ति का कही भी जीना नहीं है। वह शहर एवं गांव दोनों जगहों पर एक जैसा ही पिसता है। गांव में सुरक्षा का अभाव, ग्रामीण समाज के मूल्य विधानों पर अपनी आर्थिक तथा जातीय प्रतिष्ठा रखने वाले अपना प्रभुत्व रखते हैं। शहरों में इच्छारहित अर्थात् अलगाव के कारण भी कुछ शक्तियां ऐसी हैं, जो व्यक्ति के लिए भय, तनाव तथा असुरक्षा निरंतर बनाए रखती है। विवेच्य उपन्यास के प्रमुख पात्र कौशल द्वारा यह स्पष्ट होता है कि मूल्य शिष्ट व्यवहार और वास्तविकता आदि सब विपन्नता के तमगे बनकर रह गए हैं।

‘अकाल सन्ध्या’ उपन्यास की कथा पूर्णिया जिले के मरकसवा तथा बड़कन दो गाँव को केन्द्र में रखकर बुनी गयी है। प्रस्तुत उपन्यास गाँवों में सिर उठाती दलित शक्ति के उत्थान की कथा कहता है जिसने परम्परागत सामन्ती शक्तियों और नेतृत्व को खुली चुनौती देकर सारे गाँव के प्रबन्ध को अपनी मुट्ठी में कर लिया है। परन्तु दूसरी ओर जहां पर चिन्ता भी जताई गई है। जमींदारी या बबुआन



प्रतिरूप बनती जा रही है। यदि बड़का गांव में बबुआन टोले में गाँव के नामी-गिरामी जमींदार बाबू हरिवंश शर्मा की शानदार हवेली है तो दलित दयानंद उर्फ डायमंड का 'जलमहल' तथा दलित लुचाय राम के एस.पी. पुत्र रामचरन का विशाल 'व्हाइट हाउस' भी है। आरक्षण और नई-नई योजनाएँ गाँव में आ जाने से दलित अब गाँव में सिर उठाकर चलते हैं। गाँव के इस बदलाव और नई बनाई व्यवस्था के बदलने से सब लोग हैरान-परेशान है कि 'जन-मजूर' आज किस तरह ऐठकर बात कर रहे हैं, यह बड़ा भारी अनर्थकारी परिवर्तन है - "शूद्रों के उदय की यह कैसी काली आंधी है? इसी काली आंधी ने परंपरा से चली आ रही सवर्ण-सत्ता के चमकते सूरज को शाम होने के पहले ही ढक लिया। बाबू रणविजय सिंह की जमीन खरीद रहा है। गाँव का खवास झोली मड़र। नौकर-चाकर अब मिलते नहीं हैं। सब भाग रहे हैं - दिल्ली, पंजाब। बाबू बबुआनों की जमीन खरीद रहे हैं गाँव के राड सोलकन।" सोलकन टोले और बभन टोली का समाजी रिश्ता भी अब साधारण हो रहा है। समय के योगदान ने रिश्तों को सामान्य बना दिया है। दूसरी बात थी राजनीति के अन्तर्गत शूद्रों के अकस्मात उभार के कारण अभी तक चले आ रहे दृष्टिकोण और प्रबन्ध चरमरा गए हैं। निम्न वर्ग और उच्च वर्ग के बीच अब शादी-ब्याह भी होने लगे हैं, लेकिन चिन्ता का विषय है कि जात का खूँटा जरा भी नहीं हिल रहा है बल्कि जात पहले से भी अधिक मजबूत हो रही है। उपन्यासकार चुनावी राजनीति की गंभीरता में भी पहुँचता है, जहाँ दलितों की संख्या अतिरिक्त होते हुए भी उनमें तरह-तरह की जागृति आ जाने पर भी सत्ता का समीकरण सवर्णों द्वारा ही तय किया जाता है "अनुसूचित जातियों और पिछड़ी जातियों के लगभग सत्तर प्रतिशत से ज्यादा मतदाता थें, लेकिन इतिहास ही ऐसा था कि विधानसभा और लोकसभा के चुनावों में सवर्ण वर्ग के नेता ही विजयी होते थे। लोकसभा क्षेत्र चूँकि अनुसूचित जाति के लिए सुरक्षित था, इस कारण सवर्ण-दबंग नेताओं के पालित-पोषित अनुसूचित जातियों और अत्यन्त पिछड़ी जातियों के बहुत कम वोट मतदान कर पाते थे। यादव-कुर्मी और कोइरी जाति के मतदाताओं को छोड़ अन्य पिछड़ी और दलित जातियों के वोटों को मतदान-केन्द्रों पर जाने की जरूरत ही नहीं होती थी। उनके वोट अपनी-अपनी ताकत के अनुसार मतदान-केन्द्रों पर बाँट लिये जाते थे। पहले ही कह दिया जाता था - बूथ पर जाने की जरूरत नहीं। अपना काम करो। लोकसभा के पाँच आम चुनाव हो चुके, लेकिन बड़का गाँव के दक्षिण टोलों के कुछ गिने-चुने लोगों को छोड़ लोग जानते भी नहीं थे कि कैसे किया

जाता है मतदान।"

लोकतंत्र की सत्ता का निर्णय इसी लाठी राज से किया जाता रहा है। मार्क्सवादी विचारधारा यदि भूमिहीनों, दलितों को गोलबन्द की रही थी तो दूसरी ओर रणवीर सेना और सवर्ण सुरक्षा संघ जैसे संगठन इन गाँवों में जिस रूप में राजनीति कर रहे हैं, इसी राजनीतिक उथल-पुथल का परिणाम है कि अब दलित भी अपने वोट का मनचाहा इस्तेमाल करने लगे हैं। पहले समय में राजपूत, ब्राह्मण और भुइहार दलितों को वोट कहां देने देते थे अब दलित अपने पूरे मन से वोट देते हैं। किसी में अब इतनी हिम्मत नहीं कि कोई उन्हें वोट देने से रोके। रामवरन और लुचाय राम चमारों को अब राजपूत, ब्राह्मण सब प्रणाम करते हैं। क्योंकि अब इन लोगों के बेटे ऊंचे पदों पर कार्यरत हैं। परन्तु चिन्ता तो बस इस बात की रहती है, राजा चाहे कोई भी हो पर भुगतना तो सामान्य जनता को ही पड़ता है। क्योंकि सबसे अधिक प्रभाव उन पर ही पड़ता है - "मुद्दा एक्के बात हजूर ... एक्के बात से चिन्ता होती है कि जो चढ़ गया सिंहासन पर वही राजा। और राजा-राजा एक समान! क्या ब्राह्मण-राजपूत-भुइहार, क्या जादव, कुर्मी, चमार-धरकार ... राजा-राजा एक समान। सबको देख लिया हजूर।" प्रस्तुत उपन्यास में भारतीय गाँव के एक नए चेहरे की तस्वीर बहुत बरीकी और विश्वसनीयता के साथ उकेरी गई है। गाँव की भूमिका को लेकर लिखे गए उपन्यास 'काली सुबह का सूरज में' रामधारी सिंह दिवाकर ने गाँव एवं शहर के द्वंद को बड़ी ही सरलता से उकेरा है। गाँव में गरीब किंतु स्वाभिमानी पिता अपना पेट काटकर नरेन्द्र को पढ़ाता है, नरेन्द्र पढ़-लिखकर विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हो जाता है। पिता को उस समय गहरा सदमा पहुंचता है जब नरेन्द्र उनकी इच्छा के खिलाफ जाकर अपनी सहपाठिन विभा से शादी कर लेता है जिसका चित्रण पिता द्वारा बोली गई इन पंक्तियों के माध्यम से मिलता है। "अगर ऐसा ही करना था तो पहले ही कह देना चाहिए था। नरेन्द्र को।" शादी के बाद नरेन्द्र अपने घर-परिवार, गाँव से पूरी तरह कट जाता है। शिक्षिता पत्नी सिर्फ अपने स्वार्थपन का परिचय ही नहीं देती है, अपितु नरेन्द्र को स्वार्थी बनने के लिए भी बाध्य करती है। मृतप्राय पिता नरेन्द्र से कहता है, "मैंने बड़ी मुश्किल से इस परिवार को किसी तरह सम्भाला है। अब भार तुम्हारे ऊपर है, बिंदी का ब्याह कर देना किसी अच्छी जगह।" 10

बिंदी नरेन्द्र की फुफेरी बहन है, बुआ विधवा होने के कारण अपना पूरा जीवन अपने भाई की शरण में ही व्यतीत करती है, साथ ही अपने भाई की आर्थिक रूप से सहायता भी करती है। बिंदी के विवाह को आधार बनाकर



नरेन्द्र और उसकी पत्नी विभा अपना घर भरना चाहते हैं। इसी के माध्यम से उपन्यासकार 'काली सुबह के सूरज' को स्थापित करता है।

दूसरी ओर शहर में बसे नरेन्द्र और उसकी पत्नी की चालाकी और स्वार्थ के शिकार सभी होते हैं। अपनी प्रतिष्ठा की सुरक्षा के अधीन होकर नरेन्द्र और विभा ग्रामीण जीवन से नितान्त अजनबी, अलग कटे हुए जीवन-द्वीप में जीते हैं, "जिसमें मात्र कीमती सोफे, भड़कीले परदे, सजे हुए ड्राइंगरूम, फ्रिज, टी.वी. उनके अस्तित्व के साधन बनते हैं।" अपने हित की संतुष्टि के लिए नरेन्द्र इतना अंधा हो जाता है कि पंद्रह हजार रुपए लेकर वह भोली-भाली बिंदी का विवाह प्रौढ़ रामलाल से करा देता है। बिंदी की शादी के बहाने नरेन्द्र गांव की थोड़ी सी जमीन बेचकर पटना में जमीन खरीदता है। शहर का शिक्षित व्यक्ति किस कदर तक स्वार्थी हो गया है। वह स्व तक ही सीमित होकर रह गया है। रिश्तों के प्रति अपने कर्तव्यों को भूलता नजर आ रहा है, और अपने ही लोगों की लाशों पर महल खड़े करना चाहता है। मध्यवर्गीय शहरी व्यक्ति झूठी शान बनाए रखने के लिए शोषण पर उतर आता है। यही सुबह का कालापन है। गांव का आदमी भूखा-नंगा रहकर भी मदद करता है - जैसे रामफल, सिरनाथ चाचा, धनेसर और खुद नरेन्द्र की माँ।

इन सब स्थितियों को बड़ी बारीकी से लेखक ने देखा परखा है। गांव की निश्छल जिंदगी को संभवतः बहुत करीब से देखने वाले रामधारी सिंह दिवाकर ने अपनी भाषा और वाक्यों के विन्यास का बड़ा सहज ढंग से उपयोग किया है।

निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि रामधारी सिंह

दिवाकर बदलते हुए गांव को पकड़ने में सफल हो पाए हैं। समय के साथ होते गए बदलाव ने जमींदारों को अपनी जमीन बेचने पर मजबूर किया है और सदियों से सताए गए दलित वर्ग के लोगों में चेतना भी जागृत हो रही है। पंचायती राज व्यवस्था लागू होने के बाद सड़ी-गली राजनीति का अड्डा बने गांवों में दम तोड़ते मूल्यों की भयानक चीख भी व्याप्त हो गयी है। मानवीय संबंधों के बीच से रागात्मकता समाप्त हो रही है। पिछले कुछ दशकों से दलितों-पिछड़ों के बीच एक संपन्न वर्ग पैदा हुआ है। इस वर्ग की अपनी विशिष्टता तथा करुणता है। गांवों में व्याप्त कठिनाइयों एवं विडम्बनाओं को दिवाकर जी ने बड़ा सफलता से उद्घाटित किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जीतेंद्र वर्मा, ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र, पृ. - 126।
2. वही, पृ. - 124।
3. रामधारी सिंह दिवाकर, क्या घर क्या परदेस, पृ. - 27।
4. वही, पृ.- 81।
5. वही, पृ.- 84।
6. रामधारी सिंह दिवाकर, अकाल संध्या, पृ. - 72।
7. वही, पृ. - 210।
8. वही, पृ. - 286।
9. रामधारी सिंह दिवाकर, काली सुबह का सूरज पृ. - 16।
10. जीतेंद्र वर्मा, ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र, पृ. - 133।
11. वही, पृ. - 140।
